छत्तीसगढ़ी नाचा के अनूठे साधक कलाकार मँदराजी

जय प्रकाश

1958 की गर्मियों में हबीब तनवीर अपने परिजनों से मिलने रायपुर आए। अंजुम कात्याल के साथ एक भेंटवार्त्ता के दौरान इसे याद करते हुए हबीब तनवीर ने बताया-- " मुझे पता चला कि जिस स्कूल में मेरी पढ़ाई हुई थी, उसके मैदान में रात 9:00 बजे नाचा होने वाला है। मैंने रात भर नाचा देखा। उन्होंने तीन या चार प्रहसन पेश किए। कलाकारों में एक मदनलाल थे, बेहतरीन एक्टर। दूसरे ठाकुर राम थे। वे भी गजब के कलाकार थे। बाबूदास भी आला दर्जे के एक्टर थे। भुलवाराम उत्कृष्ट गायक-अभिनेता थे। ये सभी कलाकार अच्छे गायक होने के साथ बहुत अच्छे कॉमेडियन भी थे। उन्होंने चपरासी नकल और साधु नकल पेश किया। मैं तो मंत्रमुग्ध था। कार्यक्रम ख़त्म होने के बाद मैं उनके पास गया और कहा 'मेरे साथ दिल्ली चलोगे नाटक में काम करने के लिए?' वे तैयार हो गए। मैंने भुलवाराम, बाबू दास, ठाकुर राम, मदनलाल और जगमोहन को शामिल कर लिया। जगमोहन मोहरी बजाते थे।" आगे हबीब तनवीर बताते हैं कि बाद में वे राजनांदगाँव गए, जहाँ उनकी मुलाक़ात लालूराम से हुई। उनके घर में रात-भर उनके गाने सुनते रहे और अपनी मंडली में लालूराम को भी शामिल कर लिया। इस तरह छह कलाकार हबीब तनवीर के साथ दिल्ली गए और बेगम ज़ैदी के हिंदुस्तानी थिएटर, जिसके डायरेक्टर ख़ुद हबीब तनवीर थे, की प्रस्तुति में सम्मिलित हुए।

भारतीय रंगमंच के इतिहास की यह एक अभूतपूर्व घटना थी। यह पहला मौक़ा था जब अपढ़-गँवई कलाकार शहरी रंगमंच पर अपनी समूची ग्रामीणता के साथ अवतरित हो रहे थे ; वह भी एक क्लासिकल संस्कृत नाटक 'मृच्छकटिकम' के हिंदी रूपांतर 'मिटटी की गाड़ी' में। शास्त्रीयता और आधुनिकता के द्वैध में घिरे नागर रंगमंच के लिए 'मृच्छकटिकम' यूँ भी एक चुनौती था। ऊपर से लोक-कलाकारों का अनगढ़पन और उनके अभिनय की निचाट लोक-शैली, जो उच्चभ्रू शहरी दर्शकों को स्वभावतः सहज स्वीकार्य नहीं थी। संस्कृत-विद्वानों ने इसकी आलोचना की, कि एक 'नाट्यधर्मी' कृति को 'लोकधर्मी' पद्धति से खेला गया, जबकि इसे शास्त्रीय शैली में मंचित किया जाना चाहिए था। कुछ आलोचकों ने इसमें समरसता के अभाव या रसों के असंतुलन की शिकायत की।

मगर यूरोप से लौटने के बाद अपनी शैलीगत पहचान की तलाश में जद्दोजेहद करते हबीब तनवीर को यहीं से रंगकर्म का अपना निजी मुहावरा मिला। लोक-शैली को आलंकारिक युक्ति के तौर पर नहीं, बल्कि रंगमंच की बुनियादी ज़रूरत के रूप में विकसित करने वाले इस रंग-निर्देशक को बाद में अपनी लोकबद्ध आधुनिक रंगदृष्टि के लिए ही देश-विदेश में जाना गया। उनके नाट्यकर्म को अंततः भारतीय रंगमंच की विशिष्ट उपलब्धि के रूप में मान्यता प्राप्त हुई।

अगर सोचें तो रायपुर के लॉरी स्कूल (अब माधवराव सप्रे स्कूल) में उस रात हबीब तनवीर नाचा देखने न जाते, तब भी क्या उनका थिएटर वही होता, जिसके आधार पर आगे चलकर उनकी विशिष्ट पहचान बनी, या जिसके नाम से वे जाने जाते हैं ? क्या यह सच नहीं कि हबीब तनवीर की रंग-शैली के निर्माण में दरअसल छत्तीसगढ़ के लोक-कलाकारों के स्वतःस्फूर्त नैसर्गिक अभिनय की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है ? लालूराम, मदन निषाद, भुलवाराम, ठाकुर राम, गोविंदराम निर्मलकर या फिदाबाई के बिना क्या हबीब तनवीर के थियेटर की कल्पना की जा सकती है ? ये सभी छत्तीसगढ़ी 'नाचा' के कलाकार थे। उस रात हबीब तनवीर ने जिस नाचा-दल का प्रदर्शन देखा था, उसके प्रबंधक और संगठक दाऊ रामचंद्र देशमुख थे, जिन्होंने 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' का गठन कर नाचा-कलाकारों को संरक्षण दिया था। कहा जाता है कि हबीब तनवीर 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' के कलाकारों को तोड़ कर अपने साथ दिल्ली ले गए।

इन कलाकारों के दिल्ली जाने के बाद 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' की रीढ़ ही टूट गयी और उसका समापन हो गया। छत्तीसगढ़ के प्रख्यात लोक-संगीतकार खुमानलाल साव बताते हैं कि

इस संस्था की बमुश्किल दस प्रस्तुतियाँ हो पाई होंगी। दाऊ रामचंद्र देशमुख मृत्यु-पर्यन्त शिकायत करते रहे कि हबीब तनवीर उनके कलाकारों को बहका कर दिल्ली ले गए। (इस बात का इतना अधिक प्रचार हुआ कि छत्तीसगढ़ के लोक-कलाकारों के बीच हबीब तनवीर को देश-विदेश में छत्तीसगढ़ी कला-संस्कृति का परचम लहराने वाले एक नायक के रूप में तो याद किया जाता है, लेकिन इससे अधिक उनकी छवि भोले-भाले कलाकारों का शोषण करने वाले चतुर रंग-निर्देशक की है।)

मगर खुमान लाल साव एक दूसरी कहानी कहते हैं। वे बताते हैं कि स्वयं दाऊ रामचंद्र देशमुख ने मंदराजी दाऊ और लालूराम की अगुआई वाले रिंगनी-रवेली नाचा-पार्टी के कलाकारों को तोड़ कर 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' का गठन कर लिया । जो आरोप दाऊजी हबीब तनवीर पर लगा रहे थे, वह स्वयं उन पर भी लागू होता है। हबीब तनवीर के साथ दिल्ली गए कलाकार पहले रिंगनी-रवेली नाचा-पार्टी से जुड़े थे। रिंगनी-रवेली नाचा-पार्टी दरअसल दो अलग-अलग नाचा-पार्टियों के परस्पर विलय से मिलकर बनी थी -- रवेली पार्टी और रिंगनी पार्टी।

रवेली नाचा-पार्टी के मैनेजर दाऊ दुलार सिंह साव थे जो 'मंदराजी' के नाम से लोक-प्रसिद्ध थे। वे राजनांदगाँव के पास रवेली गांव के रहने वाले थे। रिंगनी-पार्टी के सर्वेसर्वा पंचराम देवदास थे। लालूराम, मदन निषाद और जगमोहन रवेली पार्टी के कलाकार थे। भुलवाराम, ठाकुर राम, बाबूदास रिंगनी-पार्टी के सदस्य थे। (बाद में हबीब तनवीर के साथ रवेली-पार्टी के गोविंदराम निर्मलकर, फिदाबाई, मालाबाई -जैसे कुशल कलाकार भी जुड़ गए।) खुमानलाल साव कहते हैं कि दाऊ रामचंद्र देशमुख ने रिंगनी-रवेली नाचा पार्टी के कलाकारों को तोड़ कर 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' बनाया था। हबीब तनवीर ने उनके कलाकारों को दिल्ली ले जाकर और 'नया थियेटर' में उन्हें शामिल कर उनके साथ ठीक वही सलूक किया, जो दाऊ जी ने रिंगनी-रवेली नाचा-पार्टी और उसके संचालक मंदराजी दाऊ के साथ किया था।

इसमें संदेह नहीं कि दाऊ रामचंद्र देशमुख ने 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' के ज़रिये प्रतिभा-सम्पन्न लोक-कलाकारों को एकत्र कर उनकी कला के परिमार्जन और शिष्ट रंगमंच के समकक्ष नाचा को स्थापित करने का प्रयत्न पूरी सदाशयता और निष्ठां से किया। अपनी संस्था का गठन भी उन्होंने इसी उद्देश्य से किया था। वे स्वयं कलाकार नहीं थे, मगर कला के प्रति उनमें असीम अनुराग था। सच कहा जाए तो वे विलक्षण प्रतिष्ठापक व्यक्तित्त्व थे। नाचा को प्रोत्साहित करने के लिए उन्होंने मालगुजारी की प्रतिष्ठा और धन का भी उपयोग किया। सत्तर के दशक की शुरुआत में उन्होंने 'चंदैनी गोंदा' नामक लोक-सांस्कृतिक मंच की स्थापना कर नाचा के परिमार्जन का अपना मिशन दुबारा शुरू किया। वस्तुतः 'चंदैनी गोंदा' लोकनाट्य नाचा के ठेठ गँवई प्रभावों को तराश कर समकालीन रंग-शैली में उसके रूपांतरण का प्रयत्न था। छत्तीसगढ़ के अलग-अलग इलाक़ों से आए बहुत-से कलाकार इससे जुड़े। आधुनिक रंग-प्रविधि के यत्किंचित प्रयोग और प्रस्तुति की भव्यता के कारण 'चंदैनी गोंदा' को खूब लोकप्रियता मिली। लेकिन 'चंदैनी गोंदा' की वजह से कोई नाचा-पार्टी लड़खड़ाई नहीं, जबकि 'छत्तीसगढ़ी देहाती कला विकास मंडल' का गठन जब उन्होंने किया था, तब उसमें कलाकारों के शामिल होने से सिर्फ़ रिंगनी-रवेली नाचा-पार्टी ही नहीं, और भी कई नाचा-पार्टियाँ बिखर गईं। खुमानलाल साव इसके लिए दाऊ रामचंद्र देशमुख को दोष देते हैं। बाद में बतौर संगीत-निर्देशक वे स्वयं 'चंदैनी गोंदा' से या दाऊ रामचंद्र देशमुख से अभिन्न रूप से जुड़ गए । लेकिन कलाकारों को बहका कर दिल्ली ले जाने का आरोप लगाते हुए हबीब तनवीर को वे आज भी माफ़ नहीं कर पाते।

खुमानलाल साव लोक-कलाकारों को भी बराबर का दोषी ठहराते हैं। वे कहते हैं 'कलाकारों ने लालचवश, पैसा कमाने और दिल्ली जाने के मोह में इतनी मज़बूत पार्टियों को क्यों तोड़ डाला, समझ में नहीं आता।' वर्षों बाद 1999 में इस बात को मदन निषाद ने भी स्वीकार किया। खुमानलाल साव के साथ एक बातचीत के दौरान यह पूछे जाने पर कि मंदराजी दाऊ को क्यों छोड़ा, उन्होंने कहा था-- ' मरते समय झूठ नहीं बोलूँगा गुरुजी। उस समय हम लोग लालच में आ गए थे। ' कहा जा सकता है कि पहले 'रिंगनी-रवेली नाचा-पार्टी' और बाद में 'छत्तीसगढ़ देहाती कला विकास मंडल' को छोड़ने के पीछे किसी हद तक कलाकारों का लोभ भी एक कारण था। लेकिन यह लोभ उन कलाकारों की आजीविका और नाम कमाने की कामना का स्वाभाविक प्रतिफल था। छत्तीसगढ़ी नाचा-कलाकार बेहद ग़रीबी और तंगहाली का जीवन जीते हुए अत्यंत

कठिन परिस्थितियों में भी कला-साधना के अभ्यस्त थे। हबीब तनवीर के प्रस्ताव से उनके सामने एक नया आकाश खुल रहा था। उसमें पंख खोल कर उड़ान भरने से भला वे कैसे इनकार कर सकते थे?

ये मंदराजी दाऊ की नाचा-पार्टी के ही कलाकार थे, जो 'नया थियेटर' में शामिल हुए और जिन्होंने भारतीय रंगमंच में लोक-शैली के सर्जनात्मक विनियोग का बिल्कुल अनूठा अध्याय खोला। इन कलाकारों ने लोक और नागर के द्वैत को किसी हद तक मिटा दिया। एडिनबर्ग ड्रामा फेस्टिवल (1982) में 'चरणदास चोर' के लिए जो एडिनबर्ग फ्रिंज अवार्ड हबीब तनवीर को प्राप्त हुआ, उसका श्रेय उनके निर्देशकीय कौशल के साथ उस रंग-भाषा को भी जाता है, जिसे रचने में छत्तीसगढ़ी लोक-नाट्य 'नाचा' और उसके कलाकारों का बड़ा योगदान है। 'नाचा' की लोक-अभिव्यक्ति इस नई रंग-भाषा में किसी हद तक आधुनिक मुहावरे में ढल कर आती है और एक अनूठा प्रभाव पैदा करती है।

पिछली सदी के साठ के दशक में हबीब तनवीर जब नाचा-कलाकारों की सहायता से इसे विकसित करने का प्रयास कर रहे थे, तब संगठित नाचा-पार्टियों द्वारा नाचा-प्रदर्शन की परिपाटी शुरू हुए अधिक समय नहीं हुआ था। जिन मंदराजी दाऊ के कलाकारों को हबीब तनवीर अपने साथ ले गए थे, वे ही छत्तीसगढ़ में संगठित नाचा-पार्टियों के जनक थे। इस अंचल में पहली बार एक नाचा-पार्टी का गठन 1928 में मंदराजी दाऊ ने किया। उनके गांव रवेली के नाम से यह पार्टी 'रवेली नाचा-पार्टी' कहलाई । 1928 के पूर्व छत्तीसगढ़ में कहीं भी संगठित नाचा-पार्टी नहीं थी। कलाकार यथावसर, कई बार अचानक संयोगवश, कहीं भी इकट्ठा होते और प्रदर्शन के बाद बिखर जाते।

उन्नीसवीं सदी में नाचा की 'खड़े-साज' की पद्धति प्रचलित थी,जिसमें कलाकार खड़े होकर नाचते-गाते थे। वादक कलाकार भी खड़े होकर ही चिकारा या मोहरी आदि लोक-वाद्य बजाया करते थे। तबलची भी कमर में तबला बांध कर खड़े-खड़े बजाते थे। खुले रंगमंच पर मशाल की रोशनी में खड़े-साज़ की नाचा-प्रस्तुतियाँ हुआ करती थीं। बाद में बैठक-साज का प्रचलन हुआ, जिसमें वादक कलाकार बैठकर बजाने लगे। नाचा का यह रूप आगे चलकर अत्यंत लोकप्रिय हुआ। खड़े-साज में केवल नाचना और गाना हुआ करता था। नजरिया और परी नृत्य करती थी और जोक्कड़ परिहास करते थे। कलाकार ब्रह्मानंद या गुरु घासीदास के भजन गाते थे और नाचते थे। उस ज़माने में यही मनोरंजन का साधन था। खड़े-साज में नाट्य और अभिनय भी था, लेकिन अभी वह प्रायः अविकसित था और उसकी संभावनाओं का पूरी तरह से दोहन नहीं हुआ था। बैठक-साज के नाचा में इन तत्वों का समुचित विकास हुआ। जीवन के विविध प्रसंगों को नाट्यवस्तु में ढाल कर 'गम्मत' का समावेश किया गया। नाचा में रात-भर में तीन या चार गम्मत प्रस्तुत किए जाने लगे। गम्मत वस्तुतः प्रहसनमूलक नाट्य-प्रसंग (स्किट) हैं। इन्हें 'नकल' भी कहा जाता है।

मंदराजी ने जब नाचा-दल का गठन किया, तब बैठक-साज में मशाल के प्रकाश में नाचा हुआ करता था। वाद्य-यंत्र के रूप में मुख्यतः चिकारा बजाया जाता था। मंदराजी ने मशाल की जगह पेट्रोमेक्स और चिकारा की जगह आधुनिक वाद्ययंत्र हारमोनियम का पहली बार प्रयोग किया। रवेली नाचा-पार्टी के प्रदर्शनों में हारमोनियम और पेट्रोमेक्स विशेष आकर्षण की वस्तु हुआ करते थे। इस प्रयोग से रवेली नाचा पार्टी को अपार शोहरत प्राप्त हुई। नाचा के इतिहास में यह एक अभूतपूर्व घटना थी। पेट्रोमेक्स की उजली रोशनी में और हारमोनियम-जैसे अनोखे वाद्य की अत्यंत सुमधुर स्वर-लहरियों के बीच अभिनेताओं को नाचते-गाते देखना-सुनना दर्शकों के लिए विलक्षण अनुभव था। नाचा का एक नया रूप निखर कर आ रहा था। उसका फॉर्म बदलने लगा था। उसकी प्रस्तुतियों का परिवेश भी बदल रहा था। नाचा अब खुली समतल ज़मीन पर चारों तरफ से घेरे दर्शकों के बीच नहीं, बल्कि बाजवट से बनाए गए मंचों में प्रस्तुत होने लगा। मंदराजी ने नाचा में क्रांतिकारी परिवर्त्तन ला दिया।

लेकिन यह परिवर्त्तन सिर्फ नाचा के फॉर्म या प्रस्तुति के परिवेश में दिखाई देने वाले बदलाव तक सीमित नहीं था। नाचा के विकास में मंदराजी का इससे अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि उन्होंने इस विधा को गहरी सामाजिक अर्थवत्ता और प्रासंगिकता दी। उसके नितांत धार्मिक और भक्तिपरक स्वरूप का परिमार्जन कर उसे ठोस लौकिक (सेक्युलर) और सामाजिक विषयों की और उन्मुख किया। रवेली

नाचा-पार्टी ने समाज की समस्याओं और सामुदायिक जीवन की गहरी समझ के साथ चुने गए कथानकों पर गम्मत खेले।

खड़े-साज वाले नाचा के दौर में नाट्य-प्रस्तुति का स्वरूप प्रायः धार्मिक और आध्यात्मिक था। फिर धीरे-धीरे उसने सेक्युलर स्वरूप अख्तियार करना शुरू किया। अब गम्मत लोक-जीवन के परिहासपूर्ण प्रसंगों पर केंद्रित होने लगे। इस दौर में नाचा के कलाकार, जो आमतौर पर मेहनतकश मज़दूर थे, अभिनय करते हुए अपने मालिकों (गौंटिया) पर व्यंग्य भी किया करते थे। दिलचस्प यह है कि मालिक भी इसे अकुण्ठ भाव से स्वीकार करते थे। रात-भर मसखरी करते हुए गौंटिया की हँसी उड़ाने के बाद मज़दूर कलाकार अगले दिन सुबह उसके खेत पर जब मजूरी कमाने के लिए हाज़िर होता था, मालिक सहज भाव से मुस्कुराते हुए पूछ लिया करते-- 'कइसे रे, का गम्मत करेव बे?' (क्यों रे, कैसा गम्मत कर रहे थे?) जवाब में सकुचाते हुए नौकर कह देता-- ' ठट्टा ताय दाऊ। हँसुवाय बार ताय।' (मजाक था दाऊ, हँसाने के लिए।) नौकर-मालिक का सहज सम्बन्ध फिर से क़ायम हो जाता। मगर कलाकार ग़रीब जनता के दिल की बात और उसके भीतर के दर्द को नाचा में खुल कर व्यक्त कर देता था। एक तरफ़ नाचा ग्रामीण समाज में सामुदायिकता और सौहार्द्र की अभिव्यक्ति के मंच के रूप में विकसित हुआ। दूसरी तरफ़ वह शोषण के खिलाफ प्रतिरोध का माध्यम भी बन गया। कलाकार सामंतों के प्रति अपना आक्रोश नाचा के माध्यम से प्रकट करते थे और सामंत उसे मज़ाक समझकर सहज भाव से स्वीकार कर लेते थे। दरअसल नाचा के भीतर प्रतिवादी स्वर अत्यंत मुखर था। उसकी कलात्मकता वस्तुतः उसकी प्रतिरोध-वृत्ति में निहित थी।

रवेली-पार्टी की प्रस्तुतियों में नाचा एक सेकुलर विधा के रूप में अधिक परिपक्व और कलात्मकता की दृष्टि से अधिक पुष्ट हुआ। इसमें मंदराजी दाऊ के आत्म-त्याग, समर्पण, सामजिक सजगता और कला के प्रति अनन्य निष्ठा का बड़ा योगदान है। रवेली नाचा-पार्टी के गठन का दूरगामी असर हुआ। उसके बाद छत्तीसगढ़ के अलग-अलग इलाक़ों में एक-एक कर नाचा-दलों का गठन होने लगा। पूरे छत्तीसगढ़ अंचल में नाचा-प्रदर्शनों का अभूतपूर्व विस्तार हुआ। ग्रामीण मडई-मेलों में नाचा का प्रदर्शन अनिवार्य हो उठा। बड़ी संख्या में कलाकार आगे आए और नाचा ने एक सांस्कृतिक आंदोलन का रूप ले लिया। इस कला को अद्भुत लोकप्रियता प्राप्त हुई। वह रात्रिकालीन मनोरंजन का एक मात्र माध्यम बन गया । दर्शक रात-भर नाचा देखते और आनंदित होते। यह मनोरंजन की नई अवधारणा थी। इसके पहले कमोबेश आधी रात तक गाने- बजाने की परिपाटी के रूप में रात्रिकालीन मनोरंजन प्रचलन में था। मगर रवेली-पार्टी के प्रदर्शनों में नाचा पूरी रात का मनोरंजन था। रात दस बजे कार्यक्रम शुरू होता और सुबह छह बजे तक जारी रहता। हालाँकि मंदराजी के नाचा में केवल मनोरंजन नहीं होता था। उसमें जागरूकता और समाज-शिक्षा पर भी ज़ोर था। दरअसल भारतीय लोकजागरण का एजेंडा -- समाज-सुधार और राष्ट्रीय-भावना -- नाचा के माध्यम से छत्तीसगढ़ में जन-जन तक प्रसारित हो रहा था।

मंदराजी के गम्मतों के कथानक अछूतोद्धार, अस्पृश्यता निवारण, जाति और वर्ण पर आक्षेप, उच्च वर्ग के पाखंड का दृढ़तापूर्वक विरोध, श्रमिक वर्ग की आशा-आकांक्षा, सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन-जैसे विषयों पर एकाग्र थे। उन्होंने जो विषय चुने, वे राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक सुधार से संबंधित हुआ करते थे। अंचल में प्रचलित बाल-विवाह और अनमेल विवाह के विरुद्ध उन्होंने 'बुढ़वा बिहाव' गम्मत में मुखर आवाज़ उठाई। समाज-सुधारक पंडित सुंदरलाल शर्मा द्वारा गाँधी जी के समर्थन से चलाए जा रहे अछूतोद्धार कार्यक्रम से उत्पन्न चेतना का प्रभाव मंदराजी के 'मेहतरिन' या 'पोंगवा पंडित' गम्मत में दिखाई दे रहा था। 'पोंगवा पंडित' को 1990 के दशक में जब हबीब तनवीर ने 'पोंगा पंडित' के रूप में खेला तो प्रतिक्रियावादी ताक़तों ने उसका जमकर विरोध किया और उनके मंचों पर तोड़फोड़ की । 'ईरानी' नक़ल में हिंदू-मुस्लिम एकता का संदेश था। 'बुढ़वा बिहाव' गम्मत को हबीब तनवीर ने 'मोर नाँव दमांद, गांव के नाँव ससुरार' नाटक के रूप में खेला जो देश-विदेश में अत्यंत लोकप्रिय हुआ। 'मरारिन' नकल में प्रेम और आत्मीयता का संदेश था।

लोक-मर्मज्ञ कवि जीवन यदु मंदराजी दाऊ के योगदान और नाचा के इतिहास को आज़ादी की लड़ाई के इतिहास से जोड़ कर देखने का आग्रह करते हैं। वे बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की

सामाजिक परिस्थितियों, राजनीतिक घटनाक्रम और स्थानीय परिवेश में घटित उथल-पुथल के संदर्भ में मंदराजी दाऊ के रचनात्मक मानस के गठन पर प्रकाश डालते हुए गांधी जी के छत्तीसगढ़-प्रवास और जनमानस पर उनके प्रभाव, पं. सुंदरलाल शर्मा के अछूतोद्धार कार्यक्रम, राजनांदगाँव के बंगाल नागपुर कॉटन मिल में 1919 में हुए 35 दिनों के मज़दूर आंदोलन, 1920 के कंडेल नहर सत्याग्रह के रूप में किसान आंदोलन आदि का उल्लेख करते हैं, और बताते हैं कि इन सबका उस दौर के युवा-मानस पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। वे कहते हैं कि इन परिस्थितियों में संगठित नाचा-दल का गठन किया जाना बहुत स्वाभाविक मालूम पड़ता है। मंदराजी के नाचा-प्रदर्शनों में राष्ट्र और समाज की मुक्ति का स्वप्न, देश भक्ति और समाज-सुधार की चेतना, इन्हीं कारणों से प्रकट हो रही थी। मंदराजी अपने गम्मत में आज़ादी का संदेश दिया करते थे। यह अनायास नहीं है कि रवेली नाचा-पार्टी पर अंग्रेज़ी शासन की कुदृष्टि पड़ी और उसके कार्यक्रम को दुर्ग के समीप आमदी गांव में पुलिस ने प्रतिबंधित कर दिया। अन्य स्थानों पर हुई नाचा-प्रस्तुतियों पर भी पुलिस की निगरानी रहती थी।

उन दिनों को याद करते हुए खुमान लाल साव ने लिखा है-- ' सन 1942 में स्वतंत्रता आंदोलन की ज्वाला भड़क उठी थी। दाऊजी अपने कार्यक्रम में कुछ राष्ट्रीय गीतों को शामिल कर उनका गायन प्रस्तुत किया करते थे। कुछ कार्यक्रमों को अंग्रेज़ी हुकूमत ने प्रतिबंधित भी कर दिया। उन्हें गाली-गलौज और प्रताड़ना का सामना भी करना पड़ा था। इनकी नाचा पार्टी पर अंग्रेजी शासन के खिलाफ तत्कालीन स्वतंत्रता- सेनानियों के आंदोलन का प्रभाव था। इसलिए कई स्थानों पर इनके नशा के प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगा दिया गया। अपना नाचा-प्रदर्शन के समय कलाकार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अंग्रेजी शासन के विरुद्ध कुछ उत्तेजक संवाद बोल दिया करते थे। उस समय गांव में पत्र-पत्रिकाएं, रेडियो आदि प्रचार-प्रसार के साधन नहीं होने के कारण रवेली नाचा-पार्टी को ही तत्कालीन राष्ट्रीय नेता जनसमूह एकत्र करने का अपना माध्यम मानते थे और दाऊजी भी इस प्रकार के कार्यों में रुचि रखते थे।'

कहने की आवश्यकता नहीं कि नाचा के इतिहास में मंदराजी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। सच कहें तो मंदराजी छत्तीसगढ़ी नाचा के पर्याय हैं। .स्वतंत्र भारत के छत्तीसगढ़ी युवा-वर्ग में रवेली नाचा-पार्टी और मंदराजी के प्रति अद्भुत दीवानगी थी। भोजपुरी अंचल में बिदेसिया के पुरस्कर्त्ता भिखारी ठाकुर की तरह वे छत्तीसगढ़ी नाचा के उन्नायक शिखर व्यक्तित्व हैं। नाचा को मंदराजी ने न सिर्फ संस्कारित किया बल्कि एक अनुशासित विधा के रूप में उसकी पहचान निर्मित करने और व्यवस्थित लोकनाट्य के रूप में उसे व्यक्तित्व प्रदान करने में भी उनका बड़ा योगदान है।

हबीब तनवीर ने अगर नाचा को छत्तीसगढ़ के गांव-कूचे से निकालकर विश्व-रंगमंच पर-- निस्संदेह नागर रंगमंच के अनुरूप उसे समकालीन मुहावरे में ढाल कर-- प्रतिष्ठित किया, तो उनसे पहले मंदराजी ने उसे विलक्षण ढंग से आधुनिक तेवर दिया और उसके भीतर अपने समय से टकराने का नया अंदाज़ पैदा किया। एक पारंपरिक कला को उन्होंने सुसंगठित और नए ज़माने के मुताबिक़ नया रूप दिया।

लेकिन इसके लिए मंदराजी को निजी तौर पर बहुत बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ी। यहां तक कि वे कुछ ही दशकों में अपनी समूची पुश्तैनी संपत्ति गँवा बैठे। लेकिन कला के प्रति उनके गहरे लगाव और प्रतिबद्धता में लेश-मात्र भी कमी नहीं आई।

उनका जन्म राजनांदगाँव से 7 किलोमीटर दूर रवेली गाँव के मालगुजार परिवार में 1 अप्रैल 1911 को हुआ था। 1922 में उन्होंने अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी की, लेकिन आगे की शिक्षा पर विराम लग गया। अब उनके लिए घर में कोई काम नहीं था,जिसमें उसका मन लग सके। गाँव में गाने-बजाने की कला में निपुण कुछ लोग थे। उनके सानिध्य में रहकर मंदराजी ने चिकारा और तबला बजाना सीख लिया। इस काम में उनका मन खूब लगा। उन्होंने गायन का भी अभ्यास किया। गाँव में होने वाले धार्मिक- सांस्कृतिक आयोजनों में भी बराबर रुचि लेते। फिर धीरे-धीरे आस-पास के गाँवों में होनेवाले नाचा-गम्मत में अपने पिता के विरोध के बावजूद शामिल होने लगे। एक समय ऐसा आया जब उनकी रुचि और लगन ने लगभग एक

जुनून का रूप ले लिया। फिर तो लोक-रंगकर्म को ही उन्होंने अपना जीवन-कर्म चुन लिया और अपने आपको नाचा की कला के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया।

नाचा-कला को तो जैसे इस समर्पित साधक की प्रतीक्षा थी। उन्होंने अपने गाँव के ही कुछ कलाकारों को इकट्ठा कर रवेली नाचा-पार्टी की स्थापना कर दी। मंदराजी स्वयं चिकारा बजाते और गाना गाते। परी नर्तक के रूप में दुकालू यादव और रामरतन साहू और कभी-कभी सगनू यादव काम करते। प्रहसन में जोकड़ (विदूषक) का कार्य रामरतन गोंड और सहनी ठाकुर करते थे। नजरिया नर्तक की भूमिका सुकलू यादव या सगनू यादव किया करते। रवेली में तबला बजाने वाला कोई नहीं था। तो पास के गांव कन्हारपुरी से अगरमन देवदास को बुला लिया गया। इस तरह छत्तीसगढ़ की पहली नाचा-पार्टी का गठन हुआ।

खुमानलाल साव जो मंदराजी दाऊ के मौसेरे भाई हैं, यह सारा वृत्तांत बताते हुए कहते हैं कि उनके मालगुजार पिता को यह सब बिल्कुल पसंद नहीं आया। वे बहुत नाराज़ हुए। नाराज़गी में अपने पुत्र को आगे के दिनों में वह लगातार प्रताड़ित करते रहे। आख़िर में सुधरने की आशा जब समाप्त हो गई तब थक-हार कर उनका विवाह दुर्ग ज़िले के भोथली गांव के एक संपन्न परिवार की कन्या राम्हिनबाई, जो अपने माता-पिता की एकमात्र संतान थी, के साथ कर दिया। लेकिन इससे मंदराजी की रुचि और जुनून में कोई बदलाव नहीं आया। वे पूरी तरह नाचा के प्रेम में डूबे रहे। राम्हिनबाई को भी पति का नाचा-गम्मत करना नहीं सुहाया। शुरू में उन्होंने भी विरोध किया, लेकिन फिर अपने पति के कार्यों में टोकना बंद कर दिया।

उन्हीं दिनों पड़ोसी गांव कन्हारपुरी के मुसलमान मालगुजार के घर गणेशोत्सव में कार्यक्रम की तलाश में दो नाचा-कलाकार सुकलू और नोहरदास मानिकपुरी आकर ठहरे हुए थे। मुसलमान मालगुजार उदार हृदय के थे। वे गणेशोत्सव में हिंदू भाइयों के सहयोगी हुआ करते थे। अपने गांव में उन्होंने नोहरदास का नाचा-कार्यक्रम आयोजित किया। इस कार्यक्रम में मंदराजी दाऊ ने चिकारा तथा अगरमन देवदास और रामगुलाल निर्मलकर ने तबला बजाया और रामरतन साहू ने परी का काम किया। इस कार्यक्रम की दर्शकों ने खूब सराहना की। कार्यक्रम के बाद दोनों कलाकारों, नोहरदास और सुकलू को मंदराजी ने रवेली नाचा-पार्टी में शामिल कर लिया। फिर तो एक-एक करके आस-पास के कुछ और कलाकार पंचराम देवदास, नारदराम निर्मलकर आदि भी रवेली नाचा-पार्टी से जुड़े। एक-से-बढ़कर एक प्रतिभाशाली कलाकारों के जुटने से इस तरह एक मजबूत नाचा-पार्टी उठकर खड़ी हुई। फिर देखते-ही-देखते उसने अपार लोकप्रियता और प्रसिद्धि हासिल की। (कालांतर में मंदराजी के साथ मदन निषाद, लालूराम, जगन्नाथ निर्मलकर, गोविंद राम निर्मलकर, देवीलाल नाग, फिदा बाई, माला बाई जैसे निष्णात कलाकार जुड़े। इन सभी कलाकारों ने बाद में नया थियेटर में भी काम किया और राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त की।)

1933 के जाड़े के दिनों में पूस-पूर्णिमा के दिन दाऊजी अपने मौसा टीकमनाथ साव और मामा नीलकंठ साहू को साथ लेकर हारमोनियम ख़रीदने कलकत्ता चले गए। वहां तीनों ने एक-एक हारमोनियम ख़रीदा। ये ऐतिहासिक हारमोनियम थे, जिनका प्रयोग नाचा के इतिहास में पहले-पहल हुआ। इनमें से एक स्वर्गीय नीलकंठ साव के परिजनों के पास आज भी सुरक्षित है। कोलकाता से हारमोनियम खरीद कर जब तीनों लौट रहे थे, टाटानगर स्टेशन पर डिब्बे में ही वे चरस खरीदने के जुर्म में पकड़ लिए गए। वहाँ एक रिश्तेदार ने उन्हें ज़मानत देकर छुड़वाया। लेकिन उन्हें आठ दिन टाटानगर में ही रहना पड़ा। गिरफ्तारी मंदराजी दाऊ के लिए वरदान सिद्ध हुई। इन आठ दिनों में उन्होंने एक स्थानीय हारमोनियम वादक कलाकार से हारमोनियम बजाना सीख लिया। आपने नाचा-प्रदर्शनों में वे चिकारा के अलावा अब हारमोनियम भी बजाने लगे।

1940 तक नाचा-गम्मत के स्वरूप में आमूलचूल परिवर्त्तन हो चुका था। मंदराजी के नाचा को समूचे छत्तीसगढ़ में अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त हो रही थी। आकाशवाणी रायपुर के छत्तीसगढ़ी आंचलिक कार्यक्रम 'चौपाल' के उदघोषक स्वर्गीय बरसाती भइया बताते थे कि रायपुर के सदर बाज़ार में मंदराजी का नाचा होने पर बाबूलाल टॉकीज़ के प्रबंधक दर्शकों के अभाव में रात का शो बंद कर देते थे। लोगों

में नाचा देखने का ऐसा जुनून था कि जिस गांव में रवेली वाला नाचा होता, आसपास के लोग उसे देखने के लिए टूट पड़ते।

इस लोकप्रियता के पीछे मंदराजी की अनन्य कला-निष्ठा और एकाग्र साधना थी। नाचा के प्रति उनमें ऐसा समर्पण था कि अपने घर के आर्थिक संसाधनों का उपयोग कर वह अपनी पार्टी चलाते रहें। वह संपन्न मालगुजार परिवार के थे। इसलिए शुरुआत में उनकी इस दीवानगी का असर दिखाई नहीं दिया। लेकिन फिर उनके परिजनों को यह महसूस होने लगा कि वह परिवार की संपत्ति बर्बाद कर रहे हैं। तब उनका हिस्सा देकर उन्हें अलग कर दिया गया । अब वह पूरी तरह स्वतंत्र थे। अपनी पार्टी को ऊँचाइयों की ओर ले जाने की धुन उनके भीतर थी। लेकिन कलाकारों और उनसे जुड़े लोगों ने धीरे-धीरे उन्हें निचोड़ लिया। नाचा की खातिर उन्होंने अपनी सारी संपत्ति स्वाहा कर दी। 1950 तक आते-आते दाऊजी अपनी संपन्नता गँवा चुके थे। आर्थिक रूप से कमज़ोर होने पर कलाकारों के बीच उनकी हैसियत भी कमतर पड़ गई थी। कुछ कलाकार अलग होकर दाऊ रामचंद्र देशमुख के साथ जुड़ गए। लेकिन मंदराजी की कला-निष्ठा अब भी अक्षुण्ण थी। वे हारमोनियम वादक के रूप में दीगर नाचा-मंडलियों के साथ कार्यक्रम देने जाने लगे। उन्हें क़तई हीनता-बोध न हुआ।

नाचा के प्रति उनकी एकाग्र निष्ठा का प्रमाण एक ह्रदय- विदारक घटना है, जिसका ज़िक्र खुमानलाल साव ने किया है। बताते हैं कि दाऊजी पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम में लाखों कठिनाइयों के बावजूद अवश्य जाते थे। उनके गांव से बीस किलोमीटर दूर भाठागांव में उनकी पार्टी के नाचा का आयोजन था। नियतिवश उसी दिन उनके दस वर्षीय पुत्र का असामयिक निधन हो गया। अपार दुख की इस घड़ी में उन्होंने अपना धैर्य नहीं खोया। बैलगाड़ी में अपने साथियों को उन्होंने भाठागांव के लिए रवाना कर दिया। फिर पुत्र की अंत्येष्टि करने के बाद अपनी पत्नी और परिवार के लोगों को समझा-बुझा कर आखिर में वे स्वयं शाम को भाठागांव पहुँचे। । रात-भर दर्शकों का मनोरंजन करते रहे, मानो कुछ हुआ ही न हो। भीतर घुमड़ते दर्द की उन्होंने भनक तक नहीं लगने दी। आखिर में सुबह कार्यक्रम समाप्त होने के बाद वे पुत्र के शोक में फूट-फूट कर रोए।

वह कला के उच्च नैतिक मानदंडों को आचरण में चरितार्थ कर उन्हें जीने वाले साधक कलाकार थे। उन्होंने समझौता कभी नहीं किया। अपने प्रदर्शनों में भी उन्होंने बम्बइया फिल्मों के फ़ूहड़ प्रभाव को नहीं आने दिया। वे ब्रहमानंद के भजन और भक्त कवियों तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई की रचनाओं के अलावा अपने समकालीन उत्कृष्ट शायरों-गीतकारों के गीतों का उपयोग करते थे। नाचा उनके लिए भीड़ जुटाने और लोकप्रियता प्राप्त करने का ज़रिया नहीं था। वह कला का पवित्र साधन था। लोक-जागरण और लोक-शिक्षा का माध्यम था।

नाचा की कला के प्रति उनका अकुण्ठ समर्पण बेजोड़ था। आज यह विश्वास करना कठिन है कि कोई ऐसा व्यक्ति भी हो सकता है जो कला के लिए न सिर्फ़ अपनी संपत्ति को, बल्कि अपने जीवन को भी निःशेष कर दे। वह विलक्षण कलाकार थे। कला को उन्होंने जुनून की तरह अपनाया था। नाचा के लिए वे जिए और नाचा के लिए ही खप गए। .

जीवन के अंतिम दिनों में मुफ़लिसी की ज़िन्दगी जीते हुए नाचा के इस पुरोधा कलाकार ने कला के लिए सब कुछ गँवा दिया। बरबस ही वे हमें भारतेंदु हरिश्चंद्र की याद दिलाते हैं, जिनका संकल्प था कि 'मेरे पुरखों को धन ने खाया है अब मैं इस धन को खाऊंगा' । संयोगवश छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य नाचा की परंपरा को आधुनिक चेतना के स्पर्श से सुगठित रूप देने में मंदराजी का योगदान लगभग वैसा ही है, जैसा हिंदी की आधुनिक साहित्य-धारा के प्रवर्त्तन में भारतेंदु का था। मंदराजी दरअसल कला की कपट-रहित दुनिया के स्वच्छंद नागरिक थे। सौंदर्य और आनंद के अद्वितीय क्षणों के लिए सब-कुछ लुटा देने को तैयार वे अनूठे कलाजीवी थे।

मई 1984 की एक शाम भिलाई इस्पात संयंत्र के सामुदायिक विकास विभाग द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया। जीवन में पहली बार वह औपचारिक रूप से किसी संस्था द्वारा सम्मानित

किए जा रहे थे। समारोह समाप्त होने के बाद अभिभूत होकर अपने प्रियजनों के समक्ष फूट-फूट कर रो पड़े। कुछ महीने बाद 24 सितंबर 1984 को उनका निधन हो गया।

मंदराजी नाचा में एक गीत गाया करते थे -- 'दौलत तो कमाती है दुनिया, नाम कमाना मुश्किल है।' मंदराजी ने दौलत गँवा कर नाम कमाया। रवेली गांव के लोग उनकी याद में हर साल 1 अप्रैल को उनके जन्मदिन पर 'मंदराजी महोत्सव' आयोजित करते हैं। इस आयोजन में सम्मिलित होकर छत्तीसगढ़ के लोक-कलाकार उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

मंदराजी का वास्तविक नाम दाऊ दुलारसिंह साव था। कहते हैं, बचपन में बड़े पेट वाला स्वस्थ बालक दुलार सिंह ननिहाल के आंगन में खेल रहा था। पास ही तुलसी-चौरा में बड़े पेट वाले एक मद्रासी की प्रतिमा थी। उसे देख कर नाना जी ने मज़ाक में बालक दुलारसिंह को मद्रासी कह दिया। यही नाम आकर बिगड़ते-बिगड़ते मद्रासी से मंदराजी हो गया। मंदराजी का नाम तो बिगड़ा, मगर उनके यश का बिगाड़ भला कौन कर सकता था। वे नाचा के इतिहास में अमर कीर्ति प्राप्त कर चुके हैं।

कर्मचारी नगर सोसाइटी के पास,
ए / 63 के पीछे, सिकोला भाठा, दुर्ग (छत्तीसगढ़)
491001